

तेरापन्थ

लेखक
मुनिथी युद्धमलजी

संवत्
२०१३

प्रथम संस्करण
३०००

मूल्य
1=)

विषयानुक्रम

विषय	पृष्ठ संख्या
१—उद्भव के बीज	१
२—नामकरण	७
३—आचार और विचार	१०
४—संगठन के सूत्र	१८
५—तीन महोत्सव	२३
(१) पाट महोत्सव	
(२) चरम महोत्सव	
(३) मयादा-महोत्सव	
६—दीक्षा पद्धति	२७
७—तपश्चया	२६
८—शिक्षा और कला	३१
९—साहित्य सर्जन	३३
१०—साहित्यकारी प्रवृत्तियाँ	३७
११—आचार्यश्री तुलसी	४४



तेरापंथ

१ उद्भव के बीज

जिमी भी सस्था के मूल उद्देश्यों में काल प्रवाह के उद्गम धपेडों से या निवामर्ग की असावधानी तथा असमर्थता से जन्म नम शैथिल्य आने लगता है तत्र-तत्र प्रकृति के अकारण-नियम के अनुसार ही प्रतिक्रिया स्वरूप उमी सस्था के बुद्ध व्यक्तियों के हृदय में नव जागरण का बीज उपन होता है। अनुकूल भूमि में पडा वह बीज कुछ काल तक अपने अस्तित्व को बाह्य जगत् की विष दृष्टि से बचाये रखता है और अन्दर ही अन्दर अपनी साध सामग्री पाता रहता है। आनप, वृष्टि और वायु आदि की अनवरत प्रेरणा से एक दिन वह अपना सिर ऊपर उठाता है और नील आकाश के नीचे लो कोमल पत्ता के रूप में जगत उसके अस्तित्व को देखता है। मनुष्य अपने चिरन्तन स्वभाव के अनुसार उसके तुच्छ अस्तित्व पर हसता है और मुँह बनाकर उसकी ओर अपनी उदासीनता व्यक्त करता है, किन्तु जनता के आदामीन्य तथा अन्य अनेक बाधाओं का सामना करता हुआ अकुर अपनी गति से घटता है और एक दिन जन्म वह पूरा वृक्ष बन जाता है तत्र कहीं समार उसके अस्तित्व तथा श्रुति पर विश्राम करता है और दुसकी छाया में चारों ओर अपना क्लान्ति दूर करता है।

जैन सस्था भी इस नियम का अपवाद नहीं बन सकी। कालक्रम से चली आई मानवीय दुबलताओं ने जैन साधुओं के जीवन पर भी अपन

जाठ का ताना माना जाता। अपनी नियमानुवर्तिता के लिए प्रसिद्ध तथा अपरिग्रह का उपासक साधु सघ धीरे धीरे मुगलिषु और अन्तर्मण्य बनने लगा।

अनगुण अनेला कभी नहीं आता, पूरक अंगुणों का समुदाय उसके साथ आता है। त्यागी श्रमण सघ को मुग लिप्ता के एक अंगुण ने अवगुण परम्परा का घर बना दिया। आचार को गौण मान कर वह अपनी सुविधाओं को प्रमुख स्थान देने लगा, अपरिग्रही होकर भी मकानों आदि पर प्रफारान्तर से अपना आधिपत्य रखने लगा और शिष्य गोलुपता, पारस्परिक कलह और यश कामना आदि के चषर में भी श्रमण सघ केमा कमा कि अपने लक्ष्य को भूलकर बहुत दूर भटक गया।

प्रतिश्रिया स्वरूप तब नागरण का बीजारोपण भी होना गया। शिथिलता की मात्रा के अनुसार ही अनुयायिया में अश्रद्धा और विरोध की भावनाय तीव्र होने लगी। श्रमण हितपी जन सग इस अवस्था से काफी चिन्तित था। वह चाहता था कि सघ में आचार शुशलता की पुन प्रतिष्ठा हो, किन्तु मत्ता प्रिय साधु वर्ग को इस जान की काइ चिन्ता नहीं थी, वह तो अपनी ही चाल से चलने को कृत सक्तप था।

चरित्र विभुद्धि का लाभ जनलाकर जन शामन की भावी उन्नति का मुख्य ताना गीचकर या अनुयायी सघ के असन्ताप का भय दिखलाकर तत्कालीन श्रमण सघ को स्वच्छन्दता की मादकता में डूबने में बचा लेना प्राय असम्भव हा चुका था। सत्परामश देनेवाले व्यक्तिया ने जन देखा कि शिथिलता के सूचा—पट्ट पर आये तिन क्रमाक घटने क बनाय उदते ही जा रहे हैं और उनके परामश की नूती का पुना प्रतिष्ठा के नगाड के मामने कोई भी मुनने को तैयार नहीं है तब एक दिन डिपा हुआ अकुर अपने सिर पर की मिट्टी को दूर फककर बाहर की गुठ वायु के लिये उठ गडा हुआ।

राजनगर (ग्दयपुर) क श्रावण-सघ ने उस कार्य में पहल करके साहमिकता का परिचय दिया। उसने घोषित कर दिया कि श्रमण सघ अपने में घुम आई हुई कमजोरिया को दूर करने के लिये जन तक कटिबद्ध

नहीं होता तब तक हम उसे न तो मान्य करेंगे और न बन्धन आदि से सज्जित ही करगें।

राजनगर का श्रावक-वर्ग स्थानकनासी सम्प्रदाय के तत्कालीन अनेक आचार्यों में से एक श्री कृष्णाक्षरी की आम्नाय का था, अतः जब उन्होंने यह प्रहिष्कार का सत्राण मुना तो बड़ चिन्तित हुये। वे उस समय मारवाड में थे और वहीं चातुमास का निर्णय कर चुके थे। इधर राजनगर में भी त्रिमी विद्वान् साधु की भेचने की आवश्यकता थी, जो वहाँ की मारी परिस्थिति को सम्माल कर श्रावकों के सन्नेह को दूर कर सके। आगिर अपने प्रिय शिष्य “भीमराजो” को वहाँ भेचने का उन्होंने निर्णय किया, क्योंकि वे शास्त्रज्ञ होने के साथ साथ असाधारण बुद्धिमान भी थे।

स्वामीजी राजनगर आये और श्रावकों से बातचीत की तो उनके मन से यह बात छिपी नहीं रही कि श्रावक जो लोपारोपण कर रहे हैं, वह वास्तव में सत्य है, किन्तु मत पक्ष ने उनके मन को लोप स्वीकृत की आशा नहीं दी। सयोग्रह उसी रात्रि में उन्हें बड़ जोर का ज्वर हो गया। ज्वर ने शरीर के साथ-साथ उनके मन को भी झुंझोर डाला। पाप भीरु स्वामीजी ने मन ही मन दृढ़ निश्चय किया कि ज्वर उतरने पर मैं फिर से मत्यासत्य की परख करूँगा और जो मत्य होगा उसी का अनुसरण करूँगा।

रात्रि के साथ ही ज्वर का अन्त हो गया। प्रभात के समय दर्शनार्थ आये व्यक्तिया से स्वामीजी ने अपने निश्चय का निष्प्र किया और कहा कि मैंने जो बात आप से कही थी उनके प्रिय में एक बार फिर से विचार कर लेना चाहता हूँ। शास्त्रा जी कसौटी पर अपने विचारा को कम लेने के बात जो भी निष्प्रप निकलेगा, वह मैं आपके सामने रखूँगा।

श्रावक वर्ग स्वामीजी की प्रिराग वृत्ति से पहले से ही प्रभावित था, अब मत्यान्वपण के प्रति आपकी उदार भावना से और भी प्रभावित हुआ। उसे स्वामीजी से जो आशा थी, वह सब फल्यती हाती हुई नजर आने लगी।

उद्भव के वीर

तब स्वामीजी ने विरोधी वनर शिथिलता से लोहा लेने का निर्णय किया।

सन् १८१६ में अपने अन्य वारह सहयोगियों को साथ लेकर बगड़ी शहर में—जिसे आपने इस महाभक्तिप्रमण के बाद 'मुधरी' भी कहा जाने लगा है, स्वामीजी ने क्रान्ति का त्रिगुण बना लिया। फिर क्या था ? विरोध, बहिष्कार और चचाओं का बवण्डर उठ खड़ा हुआ, किन्तु अपने विचारों के पक्षे स्वामीजी इन सबसे विचलित होने वाले नहीं थे। किसी भी तूफान का टटकर सामना करने की बात मोचर ही उन्होंने अपने माग पर पैर बढ़ाये थे।

सबसे पहले ठहरने की समस्या का ही उन्हें सामना करना पडा। सारे शहर में कोई जगह नहीं मिली, किन्तु अभाय में से भाव त्रिगोड लेने वाले को अभाय कहाँ ? समान की छतरियों में आपने पट्टा निवास किया। जगन्निसे अपनी भविल का अन्तिम स्थान समझना है, स्वामीजी ने वसी का अपनी भविल का प्रथम स्थान बनाया। वह था भी ठीक, सामान्य और महान् का अन्तर यही तो स्पष्ट होता है।

नाना विरोध और राधाय सच्ची लगन वाले को विचलित नहीं कर सकती। वे ता प्रत्युत उसने आत्म बल की वृद्धि ही किया करती है। स्वामीजी ने भी धाधाआ से सत्प करने का ही माग चुना था। यों तो आपका मारा जीवन ही सवर्षमय था किन्तु प्रथम पाच बप तो इतने सवर्षमय थे कि साधारण मनुष्य निराश हुये जिना नहीं रह सकता। किन्तु बाद में होने वाली आशातीत सफलता का बीज भी इन्हीं पांच बपों के कष्टमय जीवन में छिपा हुआ था। इन पांच बपों के कष्टमय जीवन तथा उनके वाग आशातीत सफलता का निम्न स्वयं स्वामीजी ने हेमराज जी स्वामी को अपने सम्मरण मुताते समय या किया था—“महे उणा ने छोड़ी निसरया जद पाच बर्ष तो पूरे आहार न मिल्यो आहार पाणी जाचकर उजाडमाय व साध परा जाता, रूसरी छाया आहार पाणी मेलता अने आतापना ता, आधण रा पाछा गात्र में आता, ण रीते कष्ट भोगता, कर्म काटता

२ नामकरण

नाम भिन्नताका ध्यान होता है, एक वस्तुको दूसरी से भिन्न पहचानने के लिये उसके विशिष्ट गुणों के अनुरूप या केवल भिन्नत्व की पहचान के लिये मनुष्य सदा से शब्द का उसके साथ सम्बन्ध जाड़ना आया है और वही शब्द सभेदों द्वारा वस्तु का पृथक् पृथक् ज्ञान करता आया है। यदि शब्द न हो तो मनुष्य न तो स्वयं वस्तु—विषयक विशिष्ट ज्ञान कर सकता है और न किसी दूसरे को वस्तु के सम्बन्ध में कुछ जानकारी दे सकता है। यही कारण है कि किसी वस्तु के गुण शेष से भी पहले हम उसका नाम पूछते हैं। यदि कोई नाम न मिले तो हम अपनी आर से उसकी पहचान के लिये कुछ न कुछ नाम—दही देते हैं। तेरापथ के विषय में ऐसी ही बात हुई।

स्वामीजी ने जब आत्म-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर शिथिलता का वहिष्कार किया था तब उनके सामने नया सध स्थापित करने का नहीं, किन्तु सत्य को स्थापित करने का ही एकमात्र ध्येय था। अपने ध्येय के लिये सहस्रों कष्टों का सामना करते हुए भी वे प्राणपण से जुट गये थे। सस्था के नामकरण के विषय में उन्होंने कभी कोई ध्यान नहीं दिया, उसका कारण सम्भवतः यही था, किन्तु फिर भी सस्था का नाम 'तेरापथ' स्थापित हो गया इसका कारण निम्नोक्त घटना थी —

तेरापन्थ

म्हे या न जाणता-सा म्हागी मारग जमसी, ने यू दीक्षा सी, हुने यू प्रायक श्राविता हुसी, म्हे तो जाण्यो आत्म कारज सारग्या, मर पूरा देख्या, इम जाण तपस्या करता ”।

स्वामीजी ने अपना प्रथम चातुर्मास “केलया” (उदयपुर) में किया। यहीं से सघपा पर त्रिजय पाने का क्रम प्रारम्भ हुआ। सघपा पर पाइ गई इन क्रमिक त्रिजयोंके कारण ही स्वामीजी एक अद्वितीय आत्मवशी आत्म त्रिजयाने रूपमें ससार में प्रसिद्ध हुए। आपने तप पूत जीवन के गम्भीर अनुभवों के आधार पर स्थापित यह तेरापन्थ सघ भी आत्म विजय और सगठन का एक अद्वितीय प्रतीक तभी बन सका, जब कि ऐसे महान् मज्जन्शील और मत्यान्वय साधु पुष्प के मारे जीवन का अनुभव रस इमकी जड में सांचा जाता रहा।

आज का महान् तेरापन्थ उस समय के उस छोटे से पौधे का ही विराट् रूप है, जिमका भूमिका राजनगर में बनी, बीज उपन घगडी में हुआ और सम्बन् १८१७ आपाट सुनी पूर्णिमा के दिन ससार के मग्मुग् एक नव आशा का उल्लास लिये केलया में पौधे के रूपमें पहलित हुआ था।



२ नामकरण

नाम भिन्नताका घोटक होता है, एक वस्तुको हमरी से भिन्न पहचानने के लिये उसने विशिष्ट गुणों के अनुरूप या केवल भिन्नत्व की पहचान के लिये मनुष्य मदा से शब्द का उमने साथ सम्बन्ध जोड़ना आया है और उन्हीं शब्द सन्निता द्वारा वस्तु का प्रथक् पृथक् ज्ञान करता आया है। यदि शब्द न होता मनुष्य न तो स्वयं वस्तु—विषयक विशिष्ट ज्ञान कर सकता है और न किसी दूसरे को वस्तु के सम्बन्ध में कुछ जानकारी दे सकता है। यही कारण है कि किसी वस्तु के गुण-दोष से भी पहले हम उसका नाम पृच्छते हैं। यदि कोई नाम न मिले तो हम अपनी आर से उसकी पहचान के लिये कुछ न कुछ नाम—दही देते हैं। तेरापथ के विषय में हमी ही घात हुई।

स्वामीजी ने जब आत्म-वक्त्याण की भावना से प्रेरित होकर शिथिलता का बहिष्कार किया था तब उनके सामने नया सध स्थापित करने का नहीं, किन्तु सत्य को स्थापित करने का ही एरमात्र ध्येय था। अपने ध्येय के लिये महस्त्रा बर्णों का मामना करते हुए भी वे प्राणपण से जुट गये थे। सस्था के नामकरण के विषय में उन्होंने कभी कोई ध्यान नहीं दिया, उमका कारण सम्भवत यही था, किन्तु फिर भी सस्था का नाम 'तेरापथ' स्थापित हो गया इसका कारण निम्नोक्त घटना थी —

एक बार जावपुर के शहर में कुछ श्रावक दुकान में सामायक कर रहे थे। उधर से दीवान फतहसिंह जी मिथी बाजार में से गुजरे तो उन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ कि श्रावक गण स्थान में सामायक न करके यहाँ कर रहे हैं। आखिर अपने आशय को न राख सकने के कारण वे दूकान पर जाये और डमना कारण पत्रा। शाका में से किसी एक ने स्वामी जी की क्रांति के निषेध में मारी बात बताते हुए कहा—“स्वामीजी कहते हैं कि साधुओं के कोठे स्थान नहीं होना चाहिये। मठाधीश और परिमहीना साधुता से क्या सम्बन्ध हो सकता है? स्वामी यदि अपना एक घर छोड़कर गाँव गाँव में घर बनाने लगेगा तो गृहस्थ से यह क्या कम होगा?” हम भी स्वामीजी की इस विचारधारा में पूर्ण सहमत हैं और यही कारण है कि हमने सामायक यहाँ की है। इसी प्रकार और भी श्रद्धा आचार सम्बन्धी अनेक बात श्रावक न जानते जी को बतलाइ। सारी बात ध्यानपूर्वक सुनने के बाद उन्होंने पृथ्वा—“इस समय कितने साधु इस विचारधारा का समर्थन कर रहे हैं?”

श्रावकों ने कहा—“तेरह”।

दीवानजी के साथ सेना जाति का एक कवि भी था जो उपर्युक्त मारी बात ध्यानपूर्वक सुन रहा था। सयोगशास्त्र उस समय वहाँ सामायक करने वाले श्रावक भी तेरह ही थे। साधुता और श्रावकों की सत्या का यह आकस्मिक सम्बन्ध योग उम कवि हृदय व्यक्ति को प्रेरणादायक बना और उसने उसी समय एक कविता पढ़ी जिसमें इमी “तेरह” की सत्या के आधार पर राजस्थानी भाषा के अनुसार उम सद्य के अनुयायियों को “तेरापन्थी” कहा गया था।

स्वामीजी उस समय मारवाड़ के अन्य क्षेत्रों में विहार कर रहे थे। जब उन्हें इस नामकरण की घटना का पता लगा तो उनकी मूल माहिणी प्रतिभा ने तत्काल उम शब्द को ग्रहण कर लिया। उन्होंने सिंहासन से नीचे उतर कर पूर्व दिशाकी ओर मुह करके भगवान् को नमस्कार किया और

भाठ]

नामकरण

अपनी प्रत्युपन्न बुद्धि से उसका अर्थ करते हुए कहा—“हे प्रभो यह तेरा पथ है। हमने तेरा (तुम्हारा) पथ स्वीकार किया है अतः तेरापथी हैं।”

कृत्रि की मूल प्रेरणा के उद्भासक सत्यानाची अर्थ को भी उन्होंने महत्व दिया और कहा कि जो पांच महात्रत, पांच समिति और तीन गुप्ति २३३ तेरे नियमों को अग्रण्टरूपेण पालता है वही तेरापथी साजु है।

इस प्रकार तेरापथ का नामकरण एक कवि हृदय व्यक्ति के उत्गारा के आधार पर हुआ। स्वामीजी द्वारा स्थापित अर्थ की शक्ति से पाकर आज वह आचार कुशाठ व्यक्तियों को मुक्तावस्था की ओर अपसर होने में सचमुच ही रातपथ का कार्य सम्पन्न कर रहा है।



३ आचार और विचार

आचार्य भिश्मगणी ने जो क्रान्ति की थी, उसका उद्देश्य सघ में घुमी हुई घुराइयों को दूर हटाकर उसे स्वस्थ बना देना था। सुधार की इस विगुद्ध भावना का आदर नहीं किया गया, अतः स्वामीजी को नया सघ स्थापित करने की आवश्यकता हुई। कुछ व्यक्तियों के स्वार्थ पूर्ण आग्रह पर सत्य का बलिदान कर देना घोर आत्म वचना के अतिरिक्त और क्या हो सकता है ? स्वामीजी एसी आत्म वचना करना कभी नहीं चाहते थे, अतः सत्य के भाग पर अपना सत्र कुछ न्योद्धावर कर देने में उन्हें तनिक भी कष्ट नहीं था। सत्य के प्रशमन प्रायः सभी हो सकते हैं पर सत्य के लिये पद, प्रतिष्ठा, सुगम और चिरपालित परम्पराओं को ठोकर मारकर शन शत आपदाओं को अपने सिर पर लेनेवाले विरले ही होते हैं। उन्हीं विरले मनुष्यों में से स्वामीजी एन थे।

उन्होंने सत्य को खोना और निर्भाक्तापूर्वक सत्रके सामने रखा। उनके कठोर प्रहारों से असत्य की दीवारें हरहराकर ढह पड़ीं। जैन समाज में आचार विचार सम्बन्धी जिन कमजोरियों ने घर कर लिया था, स्वामीजी ने उन सत्रका गड़ी कुशलतापूर्वक खण्डन किया और अपने नव-निर्मित सघ को इन सत्र दोषों से रहित सत्य दृष्टि दी।

आचार और विचार

आचार

स्वामीजी द्वारा मिद्धान्तानुमार पुन शोधित और निर्गीत माधु-
आचार पर तेरापथी माधुओं का आचार सक्षप में इस प्रकार बतलाया जा
सकता है —

१—तेरापथी साधु अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह इन
पांच महाव्रतों को यथावस्थित रूप से पालते हैं ।

२—ईया, भाषा, षण्णा, आदान निक्षेप और परिष्ठापन—ये पांच
समितियां तथा मनागुप्ति, पचन गुप्ति और काय गुप्ति—ये तीन गुप्तियां
(मग्मिलित रूप से इन आठों को जैन मिद्धान्त में “प्रवचन माता” कहा
जाता है) महाव्रत पालने में सहायक होती हैं अत वे इनका अनिवार्यतया
पालन करते हैं ।

३—जैन दशानुमार मिट्टी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति भी मचित्त
अथान् सचीव हैं अत वे इनकी हिंसा न करते हैं, न धरवाते हैं, और न
पत्नी हिंसा की अनुमोदना ही करते हैं ।

४—वे अपनी रथा आदि के लिये अपवात् रूप में भी अमत्य का
प्रयोग नहीं करते ।

५—वे एमा मत्य भी नहीं धोलते जा हिंसाजनक है ।

६—वे न्यायालय आदि में किसी के पक्ष या विपक्ष में साक्षी
नहीं देते ।

७—उनकी सारी वस्तुएँ याचित हाती हैं । अयाचित वृण मात्र को भी
व चोरी मानते हैं ।

८—ब्रह्मचर्य माधना के लिये वे स्त्री मात्र का स्पर्श नहीं करते और न
अकेली स्त्री से भिन्ना लेते हैं तथा न रात करते हैं । (साध्वी जन के लिये
इसी प्रकार अकेले पुरुष का ससर्ग वर्ज्य है) ।

९—वे मोना, चांदी या रुपया, पैसा और नोट आदि किसी भी मुद्रा
का उपयोग नहीं करते ।

१८—उ मठ, मंदिर, उपाश्रय या स्थानक आदि कोई भी अपना स्थान नहीं रखते।

१९—व अपने पहनने, आटन और त्रिछाने आदि के लिये ३० गज से अधिक कपड़ा एक मास नहीं रख सकते। रुई के गद्दे, रजाई आदि का प्रयोग भी उनके लिये सर्वथा बर्ज्य है।

२०—व पयस—चारपाइ आदि पर शयन नहीं करते।

२३—वे अपने भोजन, पानी आदि के लिये प्रति व्यक्ति काष्ठ या मिट्टी आदि के तीन पात्र से अधिक नहीं रखते।

२४—चाहे कौसी भी निपम परिस्थिति क्या न हो, फिर भी वे रात में न भोजन करते हैं, न पानी पीते हैं और न औषध आदि ही लेते हैं।

२५—व दूमरे तिन के लिये आहार पानी का सप्रह नहीं करते।

२६—वे रोग होने पर भी उनके निमित्त बनाये गये या खरीदे गये आहार पानी या औषध आदि का ग्रहण नहीं करते।

२७—वे उनके निमित्त खरीदे गये या बनाये गये चरम, पात्र, पुस्तक या मन्त्र का भी उपयोग नहीं करते।

२८—वेतन कर या दिलवाकर किसी अध्यापक आदि के पास नहीं पढ़ते।

२९—वे रोगावस्था में भी अस्पताल (Hospital) आदि में नहीं होते और न डाक्टर आदि से आपरेशन (Operation) करवाते हैं। आवश्यकता होने पर मातृ स्वयं ही एक दूमर का आपरेशन कर लेते हैं।

३०—उ शौच आदि के लिये बाहर जंगल में या खुले स्थानों में जाते हैं।

३१—वे अनावश्यक कामज आदि वस्तु को गलियों में न डालकर जंगल में ही निर्मित करते हैं।

३२—उ राग आदि अपनाद के बिना दिन में कभी नहीं साते।

३३—व गृहस्थ से अपनी कोई परिचर्या नहीं करवाते।

३४—वे डाक व गृहस्थ के द्वारा पत्र व्यवहार आदि नहीं करते।

आचार और विचार

२१—वे रेल, मोटर आदि किसी मयारी पर नहीं बैठते। केवल पद-यात्रा द्वारा ही प्रतिवर्ष सैकड़ों हजारों मीलें का विहार करते हैं।

२२—वे पैरों में जूता, पादुका आदि कुछ नहीं पहनते।

२३—वे अपने वस्त्र, पात्र और धर्म-ग्रन्थ आदि का बोझ अपने कंधों पर रखकर विहार करते हैं।

२४—वे अपनी वस्तुओं को कहीं आलमारी आदि में या किसी गृहस्थ के पास रखकर नहीं जाते।

२५—वे स्तरे आदि से हजामत नहीं बनवाते, हाथों से केश लुचन करते हैं।

विचार श्रद्धा

स्वामीजी ने साधुओं की आचार शिथिलता के साथ साथ विचार शिथिलता को भी दूर हटाया। तत्कालीन तथा पूर्वकालीन कुछ व्यक्तियों की लौकिक दृष्टियाँ के आग्रह ने जैन श्रमणा को इस प्रकार प्रभावित किया कि वे उसी बहाव में बहकर अपने निवृत्ति प्रधान धर्म की सवाङ्गीण दृष्टि का मुला बँध। वे अध्यात्म और लोक व्यवहार की सीमा—रेखा की विस्मृति से उसे मुग्ध हुए नि दोनों का कहीं पार्थक्य है, यह सोच निकालना उनसे लिये दुष्कर हो गया, किन्तु सूक्ष्मदर्शी स्वामीजी ने उम प्रवाह से दूर रहकर मूल सिद्धान्तों के आधार पर पुन सोच निकाला कि लोक धर्म या लोक-व्यवहार आवश्यक या अनिवार्य होने पर भी आत्म धर्म के क्षेत्र में प्रविष्ट नहीं किया जा सकता। दोनों की अपनी-अपनी सीमा है, उसके बाहर दोनों का स्वरूप विघटित हो जाता है। उन दोनों को मिला कर कोई अपनी समन्वयकारी दृष्टि का परिचय देना चाहे तो यह उचित नहीं कहा जा सकता। स्याद्वादी का काय वस्तु स्वरूप को जैसा है वैसा जानने या स्थापित करने का है न कि असद्भूत धर्म को जानने या स्थापित करने का।

जिस प्रकार दर्शन क्षेत्र में जैन दर्शनिका ने लोक दृष्टि का समन्वय करते हुए अथग्रह आदि को यद्यपि “सां-यावहारिक प्रत्यक्ष” कहा है किन्तु उसे परमार्थतः प्रत्यक्ष नहीं माना है उसी प्रकार धार्मिक विचरन के क्षेत्र में

लौकिक कार्यों को व्यवहार धर्म या लोभ धर्म कहा जा सकता है किन्तु उसे परमार्थ धर्म या आत्म धर्म का रूप नहीं दिया जा सकता ।

तेरापन्थ के विचारों से पता करना वैसा ही गलत है, जैसा कि घी और तम्बाकू को इकट्ठा कर देना । घी और तम्बाकू दोनों ही अपने अपने स्थान पर अपनी महत्ता रखते हैं । जानों का ही अपने अपने प्रकार का उपयोग है, किन्तु एकत्रित कर देना ही अपना स्वतंत्र ग्यो बैठते हैं । ठीक इसी प्रकार से लोकधर्म और परमात्म का भी समझना चाहिये । एक समानित प्राणी के लिये जीवन मरणों का ही महत्त्व है और दोनों ही यथास्थान उपयोगी हैं किन्तु मोना को तुल्यरूपता देकर एक कर देना किसी भी प्रकार से व्ययुक्त नहीं हो सकता ।

स्वामीजी के विचार क्षेत्र में इस भूले हुए मूल्य को फिर से स्थापित किया और इस बात पर जोर दिया कि आत्मा का अपनी शक्ति की सीमा तक प्रसन्नता कर नीचे मत गिराओ, उसे अपने ही स्थान पर रहने देकर तुम उस तक पहुँचने की चेष्टा करो । यदि तुम उस तक नहीं पहुँच सकते तो निःसंकोच अपनी असमर्पता स्वीकार कर अपनी मूल्य दृष्टि का परिचय दो ।

स्वामीजी के विचार-तथ्यों का परिचय संक्षेप में इस प्रकार दिया जा सकता है —

१—“सबे पाणा मंत्र मत्ता न हतना” आदि सिद्धान्त के पाठ यह बतलाते हैं कि पंचेन्द्रिय से लेकर पंचेन्द्रिय तक के किसी भी प्राणी का मत मागे, मत सताथा । प्रत्येक प्राणी अपने वश चलने तक जीवित रहने की कामना रखता है, मरने की नहीं, अतः तुम्हारा कर्तव्य ही नहीं बल्कि धर्म है कि उनके इस जीवित रहने के अधिकार में किसी भी प्रकार से बाधक न बनो ।

२—जिस प्रकार तुम्हारा जीवन तुम्हें प्रिय है, उसी प्रकार वनस्पति आदि पंचेन्द्रिय जीवा का भी अपना जीवन प्रिय है । यदि तुम अपने जीवन की रक्षा के लिये दूसरे किसी भी प्राणी का वध करते हो तो वह धर्म नहीं हो सकता, क्योंकि दूसरे किसी भी प्राणी के जीवन पर तुम्हारा कोई अधिकार नहीं है ।

आचार और विचार

३—यदि तुम अनन्यापाय होकर ही अथात् जीवित रहने के लिये दूसरा कोई उपाय न मिलने पर ही मसा (अन्य जीवों की हिंसा) करते हो तो भी तुम धर्मके भागी कदापि नहीं हो सकते क्योंकि तुम्हारी अपूर्णता या त्रिवशता की सीमा ही अहिंसा की सीमा नहीं है। वह तो मसार के सभी जीव गरिया को अपने में व्याप्त करती है।

४—मनुष्य सर्वश्रेष्ठ प्राणी है, अतः उसकी रक्षा के लिये अन्य तुच्छ प्राणियों का सब सामान्य क्षेत्र में मान्य होने पर भी धर्म क्षेत्र में मान्य नहीं हो सकता, क्योंकि धर्म “मानववाद” को ही मानकर नहीं चलता।

५—यदि तुम आवश्यक हिंसा से मुक्त नहीं हो सकते तो निःसंकोच उसे हिंसा मानो। हिंसा को अहिंसा मानकर करना दो गलतियाँ करना है जिनकी अनिवार्य होने पर हिंसा की हिंसा समझना एक गलतीसे बचना है।

६—“मिति मे सत्य भूषणम्” अथात् सत्य प्राणी मेरे मित्र हैं यह सिद्धान्त वीतराग का है, अतः सब प्राणियों की समता का प्रतीक है, जिनकी अपने या अपने समान किसी इतर मनुष्य के लिये की गई आवश्यक हिंसा विषमता की प्रतीक है। आवश्यकता मनुष्य की दश कालानुसार स्वयं बनाई हुई होती है, अतः उसकी काई एक निर्धारित सीमा हो नहीं सकती और तब सारी की सारी हिंसा आवश्यकता के क्षेत्र में प्रविष्ट की जाकर “धर्म” बतलाई जा सकती है, किन्तु ऐसा करना आत्म-वचना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है, हिंसा मदैव पाप है, चाहे फिर वह कितनी भी आवश्यक क्या न हो ?

७—जिमी एक को मुग्न पहचानने के लिये यदि तुम किसी दूसरे को कष्ट पहुँचाते हो तो तुम्हारी अन्तरतम भावना में एक के प्रति राग और दूसरे के प्रति द्वेष छिपा हुआ है। राग और द्वेष से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं, वह तो इन दोनों से दूर माध्यस्थ भाव से ही सम्बन्ध रखता है।

८—यदि तुम किसी दो व्यक्तियों का पारस्परिक कलह उनके हित-परिवर्तन द्वारा दूर कर सकते हो तो करो और चेष्टा प्रवृत्त करो, क्योंकि द्वेष आदि को मिटाना धर्म है। किन्तु यदि तुम उनमें से किसी एक के पक्ष

मे हाजर त्मरे को चाहे कमनोर का भी विनयी बनाते हो तो तुम स्वयं उमी बलह के, निमे मिटान के लिए तुम उममे सम्मिलित हुए थे, स्वय भी भागी बनते हो ।

८—पाप जो ज़रूरतसे से मिटाने की कागिश करना पाप है अन किमी प्राणी का बचाना चाहते हो तो उमके विचार बल्लो, पाप स्वय मिट जायेगा ।

१०—“बनाआ” की अपेक्षा “मत मारो” का मिटान्त विशिष्ट है । “बनाआ” का कार्य रूप म परिणित करते समय आवेश तथा हिंसा को प्रश्रय देना भी आश्रयक हो सकता है किन्तु “मत मारो” मे ये दोष कभी नहीं पनप सकते । उसम ता अपनी वृत्तिया पर और अधिक नियंत्रण करना होता है ।

११—तुमने कसाइ को समझा कर हिंसा करन का त्याग करा दिया, फत्सरूप पगु बच गये । पगुआ का बचना तभी सम्भव हुआ जब कि कसाइ को हिंसा म पाप का भान हुआ । तुम्हारी समझाने की क्रिया का सीधा सम्प्रत्य कसाइ मे हुआ फलत कसाइ की आत्मा का उरथान हुआ, यही धर्म है । पगुआ का बचना तो आउपगित है । पगु दूसरे ही क्षण किमी त्मरे के द्वारा मारा जा सकता है किन्तु तुम्हारा धर्म नहीं मर सकता ।

१२—यदि पगु को बचाना ही मूल लक्ष्य हो तो कसाइ को धोस बताने का रूपये देकर भी एसा क्रिया जा सकता है किन्तु धोस बताना और लालच दना दाना ही हिंसा मूलक क्रियाएँ ह, धर्ममूलक नहीं । रूपये दना तो कसाइ के व्यापार को और भी बढ़ावा दना है । यदि मूल लक्ष्य कसाइ को समझाने का हो तो हिंसामूलक वृत्तियों को उत्तेजना भी नहीं मिलती और कसाइ के समझने पर हजारों पगु स्वत बच जाते हैं । सारास यह है कि अहिंसा स्थापना का मूल क्षेत्र कसाइ हो सकता है पगु नहीं ।

१३—धम बलात्कार म नहीं, उपदश म है अथात् हत्य परिवर्तन कर दन म है ।

आचार और विचार

१४—धर्म पैसों से नहीं खरीता जा सकता, वह तो आत्मा की सत्प्रवृत्तियां में स्थित है।

१५—जहाँ हिंसा है वहाँ धर्म नहीं हो सकता।

१६—धर्म त्याग में है, भोग में नहीं।

१७—सयमी पुरुष को दान ही आध्यात्मिक दान है क्योंकि वह सयम-वर्धक है। शेष दान सामाजिक कर्तव्य और अवनव्य में अन्तर्निहित है।

१८—राजनीति और समाज नीति का मूल लक्ष्य वेजल लौकिक सद्ब्यवस्था है जबकि धर्म का मूल लक्ष्य आत्म स्वरूप को प्राप्त करना है अतः धर्म इनसे पृथक् है। फिर भी यह निश्चित है कि राजनीति और समाज नीति में धर्म बाधक न बनकर उनके विशुद्धीकरण में सहायक हो सक्ता है।

१९—हर जाति और हर वर्ण का मनुष्य धर्म करने का पूरा अधिकारी है क्योंकि धर्म किसी की बपौती नहीं है। वह तो सब कल्याणकारक है।

२०—साधु और गृहस्थ का धर्म पृथक् पृथक् नहीं है, क्योंकि, अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिमृद् की पूर्णता ही दोनों का आदर्श है। हा, इनको अपने जीवन में उतारने में तरतमता अंतर हो सकती है। तरतमभाव एक ही वस्तु की “विकसित” और “अविकसित” अवस्था विशेष से सम्बन्धित होता है। सर्वथा भिन्न वस्तुओं में तरतमता नहीं हो सकती।

२१—गुणयुक्त पुरुष ही वन्दनीय है, गुणशून्य पुरुष यदि मनुष्यासी का वेश (ज्ञाना) धारे हो तो भी वह उच्च नहीं है। महापुरुष की प्रतीक मूर्ति और उनके ज्ञान का प्रतीक शास्त्र दोनों ही वस्तुयें उनके विषय में विशेष जानकारी देने में सहायक हो सकती हैं लेकिन फिर भी स्वयं चैतन्य शून्य होने के कारण पूजनीय नहीं हैं।

२२—ससार अनादि अनन्त है, उमका कता इश्वर नहीं है।

२३—धर्म सारे ही कर्तव्य है पर सारा कर्तव्य धर्म नहीं है, क्योंकि एक सैनिक के लिये युद्ध करना कर्तव्य हो सकता है पर आध्यात्मिक धर्म नहीं।

४ : सगठन के सूत्र

तरापन्थ सघ में इस समय ६४४ साधु साध्विया हैं। इनके सचालन का मारा भार एक आचार्य पर है। आचार्य ही इन सगक चातुर्मास तथा विहार करने के स्थानों का निधारण करते हैं। प्रायः साधु साध्वियाँ तीन-तीन और पाँच पाँच की सरया में विभक्त रिये हुए होते हैं। प्रत्येक मूप (Group) में आचार्य द्वारा निधारित एक अमणी होता है और गेप उसने अनुगामी। प्रत्येक मूप (Group) को "सिंघाडा" कहा जाता है।

ये सिंघाड़े पैदल यात्रा करते हुये भारत के रानस्थान, पचाब, गुजरात, वन्प्रई, सौराष्ट्र, कच्छ, उत्तरप्रदेश, उड़ीसा मध्यभारत और मद्रास आदि विभिन्न प्रान्तों में अहिंसा और सत्य का प्रचार करते रहते हैं।

एक आचार्य की आज्ञा में चलने वाले ये साधु साध्वी अपने आपसे सघ का एक अग मानकर काय करते हैं। मरका परस्पर भाई भाई का सा सम्बन्ध होता है। "एक के लिये सब और सबके लिये समुदाय में यदार्थ हृद्द प्रतीत होती है। बाल, रोगी या वृद्ध मर मं ये सघ किसी प्रकार की अरुण्य परम सौभाग्य समगते हैं।

शिव के सतगाग सचालक
 सारवागी द्वारा रचित विधान
 हैं। सारा सौग आपसे

पचाब]

सगठन के सूत्र

सघ की व्यवस्था में आज तक किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं आने पाई है और न भविष्य में ही आ सकने की सम्भावना है। स्वामीजी के ये बद्दुआर कि साधु जब तक श्रद्धा आचार में दृढ़ रहेंगे, घट्टादि की मर्यादा का उल्लंघन नहीं करेंगे और स्थान नहीं पनायेंगे तब तक यह मार्ग त्रिशुद्ध रूप से चलना रहेगा—उन्हें प्रतिपल जागरूक रहने और अपनी मर्यादा में दृढ़ रहने के लिये सदैव प्रेरित करते रहते हैं।

जैन शास्त्रों में श्रमण सघ के लिये जो मर्यादायें प्रतिपादित हैं वे तो सर्व मान्य हैं ही, उनके अतिरिक्त वर्तमान समय को ध्यान में रख सघ के सगठन को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिये चिन मर्यादाओं का निर्माण तेरापथ के आचार्यों ने किया है, वे वस्तुतः बहुत ही दूरदर्शितापूर्ण हैं।

पाठकों की निजामा-पूर्ति के लिये उनमें से कतिपय मर्यादाओं का यहाँ उल्लेख किया जाता है, जैसे —

सब साधुओं को एक आचार्य की आज्ञा में चलना होगा, वर्तमान आचार्य भागी आचार्य का निराचन कर दे, कोई साधु अनुशासन भंग न करे, अनुशासन भंग करने पर तत्काल बहिष्कृत किया जा सकता है, कोई साधु अपना अलग शिष्य न बनाये, दीना देने का अधिकार एक मात्र आचार्य को ही है। आचार्य जहाँ कहे वहाँ मुनि विहार या चातुमास करे, अपनी इच्छानुसार न करे। आचार्य प्रति निष्ठा रखे आदि आदि। उपर्युक्त मर्यादायें एकमात्र आचार्य को ही अनेक अधिकार संपत्ती हैं अतः एकतन्त्र प्रणाली की हैं किन्तु इनके साथ-साथ अन्य सघ मर्यादायें समाजवादी प्रणाली के अनुसार हैं चिनका कुछ विवरण नीचे दिया जाता है —

सम्मुख्य^१ के सब कार्य यथाक्रम वारी से किये जाते हैं। प्रत्येक व्यक्ति

१—जो कार्य सबके लिये आवश्यक या सबका हा होता है किन्तु उसे सम्पन्न करने लिये एक दो व्यक्ति की ही आवश्यकता होती है, ऐसे सामूहिक कार्य 'सम्मुख्यका कार्य' कहते हैं।

तेरापन्थ

अपनी बारी के लिए काम करने के बाद जब तक एक चक्र समाप्त नहीं हो जाता तब तक उस कार्य से निश्चिन्त हो जाता है।

साम्ना के कार्य पाती से किये जाते हैं। कार्य को व्यक्ति सरया के अनुसार बांट लिया जाता है और प्रत्येक व्यक्ति अपने विभाग में आय कार्य का करने का जिम्मेदार होता है।

धर्म ग्रन्थ आदि का भार व्यक्ति सरया के अनुसार बांट लिया जाता है।

बैठने का स्थान 'साम्ना' के क्रम से तथा शयन का स्थान व्यक्तिगत से निर्धारित कर लिया जाता है।

गोचरी (भिक्षा) में गृहस्थ के घर से सामूहिक रूप से मन्त्र लिये आहार लाया जाता है। कितना आहार आता है उसे पूर्ण निर्धारित क्रम से सबसे अधिक कर दिया जाता है। दम साबुदा और गोचरी में पाच राटियाँ आय तो आधी आधी मन्त्रों मिलेंगी। यह नहीं हो सकता कि पाच ग्राह्य और पाच भूय ही रहें।

हस्तलिखित ग्रन्थों पर व्यक्तिगत अधिकार न होकर सब का अधिकार होता है, उनका उपयोग आचार्य की आज्ञा से सभी कर सकते हैं। आपश्यन ग्रन्थों का नियमित रूप से लेखन भी एक व्यवस्था के आधार पर मन्त्रों करना होता है और वे ग्रन्थ भी उन लेखकों के न होकर सब के ही होते हैं।

साधु तथा म आश्यक उपकरणों का (रजोहरण, प्रमाजनी आदिका) निमाण भी सामूहिक रूप से होता है और उस पर सब का अधिकार होता है। साधु सब की वार्षिक आवश्यकता की मात्रा को ध्यान में रख कर ही इनका निमाण कराया जाता है।

१—आचार्य के समाप होनेवाले साधु साधवियों का चित्त समाधि या आहार आदि की व्यवस्था के लिये पाँच पाँच या मान मान व्यक्तियों के बनाय गये ग्रुप को 'साम्ना' कहते हैं। इसमें एक व्यक्ति पर उसका भार होता है। एम अपने ग्रुप के कार्य को 'साम्ना का कार्य' कहते हैं।

संगठन के सूत्र

प्रत्येक अग्रणी माधुसे प्रति दिन २५ गाथा के हिसाब से कर लिया जाता है और प्रत्येक अग्रणी साध्वी से प्रति उप एक रजोहरण और एक प्रमाजनी के निमाण के रूप में कर लिया जाता है। जो अग्रणी यह कर नहीं दे सकता उससे बृद्ध तथा रोगी की सेवा चाकरी के रूप में कर लिया जा सकता है। पश्चिम गाथा और एक दिन की सेवा बराबर गिनी जाती है।

सत्र की आवश्यकता पूर्ति के लिये लिखाये गये प्रत्येक श्लोक को तथा ३७ अक्षर प्रमाण गण को एक "गाथा" कहा जाता है। "गाथा" माधु सत्र में श्रम तथा रस्तु के त्रिनिमय का माध्यम भी होती है। जो व्यक्ति कितनी गाथाएँ लिखकर सघ को समर्पित करता है वे सब उसके नाम जमा कर ली जाती है। आवश्यकता होने पर वह अपनी गाथाओं को रच कर सकता है।

जो ग्रन्थ लेखन नहीं कर सकता वह दूसरे का कार्य करके गाथा समूह कर सकता है। जिस किस काय के लिये कितनी कितनी गाथाय मिलती है इसका भी नियम है। कुछ कार्य ऐसे हैं जिनपर गाथाओं की लागत का नियंत्रण नहीं है। उनका गाथा मूल्य घटता बढ़ता रहता है। जमा की गई यह गाथाओं की पूर्ण मृत्यु के बाद समाप्त समझी जाती है। एक की गाथा सरथा पर दूसरे का कोई अधिकार नहीं होता।

इस प्रकार तेरापथ के विधान में एक तंत्र के साथ समाजवाद का एक समा मर्ममग्न हुआ है जिसका कोई दूसरा उदाहरण मिलना कठिन ही नहीं किन्तु बहुत ही अमभव है। धार्मिक परम्परा में तो यह व्यवस्था अभूतपूर्व कही जाय तो भी अत्युक्ति नहीं होगी। करीब दो सौ वर्ष पुराना यह समाजवाद तेरापथ के आचार्यों के उत्तर मस्तिष्क की आदर्श दृष्टि है।

जिस समय भारतवासियों ने सभ्यतया समाजवाद का नाम भी नहीं सुना था, उस समय में तेरापथ के धर्माचार्यों ने अपने सघ में ऐसे नियम प्रचलित कर दिये थे जिन्हें उत्पान्न और श्रम पर व्यक्ति का अधिकार न होकर सघ का अधिकार रहे। वर्तमान समाजवाद के मूल सिद्धान्तों को

तेरापन्थ

उन्होंने बहुत पहले से ही अपने अन्तज्ञान से खोज लिया था और अपने धर्म सत्र पर हमका सफल प्रयोग किया था। ये बातें किसी भी खोज पतिहासिक के लिये बड़े आश्चर्य का विषय होगी।

तेरापन्थ के वर्तमान अखंड सगठन की प्रायः सभी जगह प्रशंसा है इसका सम्पूर्ण श्रेय यदि किसी को दिया जाय तो वह इन मर्यादाओं के निगाता तेरापन्थ के भविष्यद्रूप आचाया को ही एक मात्र दिया जा सकता है। यदि हम सगठन का कोई अनन्य कारण बतलाया जाये तो एक मात्र हमारे समाजशास्त्री विधान की ही बतलाया जा सकता है। इस विधान का ही यह एक है कि इतना बड़ा साधु समाज एक गति विधि से मानव कल्याण के पुनीत मार्ग पर अग्रसर हो रहा है।



५. तीन महोत्सव

“सदा दिवाली सत के आठों प्रहर आनन्द” यह एक अति प्रचलित पुरानी कहावत है, जिसका भावार्थ है—साधु जन के तो मदैव पर्व और आनन्द होता है, वे इन राह्य पर्वों या आनन्दों का क्या मनाय ? परन्तु यह कहावत—गृहस्थों द्वारा मनाये जानेवाले पर्वों से साधु को अलग रहना चाहिये, क्योंकि वे भौतिक सुख मामूली और शारीरिक आनन्दोच्छ्वास के ही प्राय चोन्म होते हैं—इस भावना का प्रगट करने के लिये है। आध्यात्मिक पर्व तो लक्ष्य को और भी नजदीक लाने में सहायक होते हैं—गति को बल देना अध्यात्म में भी आवश्यक होता है और वह बल पर्व देते हैं इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

पर्यूपण, सम्प्रतमरी आदि जैनो के ऐसे ही पर्व हैं जो प्रत्येक व्यक्ति को जागरूक रख कर क्षमाशील और अद्वेषी बनने की प्रेरणा देते हैं। अध्यात्म-पर्व आत्म जागरण, स्तवन, ध्यान, चिन्तन तथा तपश्चर्या आदि के द्वारा ही मनाये जाते हैं।

तेरापथ में उपर्युक्त पर्यूपण आदि पर्व तो मनाये ही जाते हैं पर इनके सिवाय और भी तीन पर्व मनाये जाते हैं—जिन्हें महोत्सव कहते हैं। ये तीनों महात्मन अपना अलग अलग महत्त्व रखते हैं। तेरापथ की प्रगति और सगठन में इन महात्मनो का भी बहुत बड़ा सम्माननीय स्थान रहा है। इन तीनों का क्रमशः पाट महोत्सव, चरम महोत्सव और मर्यादा महोत्सव कहा

जाना है। तेरापन्थ के चतुर्थ आचार्य श्री जयाचार्य ने शासन हित की दृष्टि से इनका सूत्रपान किया था। पाट महोत्सव का प्रारम्भ सन् १६११ में, चरम महा मजरा सन् १६१४ में और मयादा-महात्सव का सन् १६२१ में हुआ था। तब से आज तक उत्तरोत्तर घटते हुए हफ्ते के साथ प्रतिवर्ष ये महोत्सव मनाये जाते रहे हैं।

(१) पाट-महोत्सव

यह महोत्सव वर्तमान आचार्य के पट्टारोहण दिवस के उपलक्ष्य मनाया जाता है। अन्य महोत्सवों के समान इसकी तिथि नियत नहीं होती। प्रथम आचार्य की विधिवत शासन सूत्र सभालने की तिथि ही इसकी तिथि होती है। तेरापन्थ के वर्तमान नयम् आचार्य श्री तुल्सीगणी भाद्र शुक्ल नयमी के दिन सिद्धामनामीन हुए अतः इस महोत्सव का वर्तमान तिथि यही है। उस दिन आचार्य अपने विगत वर्षका मिहावलोकन करते हैं और अपने भागी कार्यक्रम की दिग् सूचा देते हैं। तत्रस्थ साधु-समाज आचार्य की स्तवना करते हैं और निष्ठा पूर्वक आचार्यदेव के सान्निध्य में शासन सेवा के लिये अपने जीवनोत्सर्ग की कामना करते हैं।

(२) चरम महोत्सव

यह महोत्सव तेरापन्थ के आदि सन्स्थापक प्रातः स्मरणीय प्रथमाचार्य श्री भिक्षुगणी की शुभ स्मृति के उपलक्ष्य मनाया जाता है। सन् १८६० भाद्र शुक्ल प्रयोदशी के दिन स्वामीजी निवृत्त हुए थे, उनके क्रान्तिमय जीवन का यह चरम दिन (अन्तिम दिन) था। महापुरुषों का जीवन नितना मृत्युवाहना है मरण उससे भी कहीं उदरर हाता है। जीवन शाधश्रेय है तो मरण शाध भी पूणता। सारे जीवनका सचित अनुभव—अमृत मरण के रूप में अमर बन कर जगत् को अमरता का संदेश देता है। यही कारण है कि महापुरुष मरण के उपरान्त भी जीवित रहते हैं। जीवित ही नहीं किन्तु जीवितकाल से भी अधिक निरंतरर अनेकों मुमुक्षुओं का जीवन सव्य प्रदान करत है।

तीन महोत्सव

स्वामीजी ने अपने जीवन मसाम के विनयानुभयों का रम अपने अतिम उपदशों मे निचोड कर रग दिया था । उनकी चरम तिथि जगत के एर परम उपदेष्टा के प्रति हार्दिक वृत्तता प्रकाशन की तिथि है, यही चरम मनोत्सव है इस दिन स्वयं वर्तमान आचार्य द्वारा स्वामीजी के जीवन पर नाना दृष्टियों से प्रकाश डाला जाता है और स्वामीजी की जलाड हुड सञ्चरित्रता की लौ को मना प्रज्ज्वलित रखने का मरूप किया जाता है ।

साधुगण भी वरिता, गीतिका और भाषण आदि से स्वामीजी के प्रति अपनी अनन्य भक्ति प्रदर्शित करते हैं और उनके द्वारा निर्दिष्ट माग पर अविचल भाव से चलते रहने का सरूप करते हैं ।

(३) मयादा महोत्सव

यह महोत्सव माघ शुक्ला मसमी के दिन मनाया जाता है । इसे माघ महोत्सव भी कहते हैं । यह दिन तेरापथ के विधान की पृणता का दिन है । इस अवसर पर तेरापथ का प्राय समूचा साधु सव आचार्य श्री द्वारा पूर्ण निर्दिष्ट किसी एक क्षेत्र मे एरत्रिण होता है । विगत वर्ष म किया गया काय आचाय देव से निवेन्ति किया जाता है और आगामी वर्ष के लिये एर कार्यक्रम निधारित किया जाता है । साधु भाषिया के विहार तथा चातुमास के क्षेत्र भी आचाय देव द्वारा प्राय सभी समय निर्णीत किये जाते हैं । साधुओं म परस्पर विचार गोष्ठियाँ होती रहती ह, निनमे सव की आन्तरिक व बाह्य विनियोपर तथा सैद्धान्तिक, नार्शनिक या साहित्यिक विषया पर विचार विनिमय किया जाता है, सभी सभी कविता, लेख, भाषण आदि की प्रतियागिता भी हानी रहती है । मारांश यह है कि माघ महोत्सव तेरापथ की प्रवृत्ति का केन्द्र बना हुआ है ।

चातुमास समाप्ति से लेकर माघ शुक्ला ७ तक के दिन तेरापथ ध्रमण-सत्र के लिये वृत्त ही उपयोग के हो जाते ह । आचार्यस्य की शिक्षार्था, विचार गोष्ठिया तथा प्रतियोगिताओं आदि द्वारा ये दिन इतने व्यस्त कार्यक्रम के होते हैं कि समय की कमी अखरे विना नहीं रहती ।

मसमी के दिन आचायश्री द्वारा मर्यान्तार्था का वाचन होता है । और

तेरापन्थ

सारे श्रमण साग को उन मयादाआ मे अडिग रूप से चलने की प्रेरणा दी जाती है। स्वयं स्वामीजी के हाथ से लिखा हुआ वह जीण सा मार्यादापत्र, जिसने आधार पर यह महोत्सव मनाया जाता है सबको दिखलाया जाता है। इस अवसर पर साधु साध्वियों के भाषण, कविताएँ आदि भी हाती है।

तेरापन्थ सब अपने शासन के विधान को बहुत ही पवित्र दृष्टि से देखता है। क्याकि वह जानता है कि एक आचार, एक विचार और एक आचार्य की लाभकार्य पद्धति को स्थिर बनाये रखने के लिए विधान के प्रति श्रद्धालु हाना अत्यन्त आवश्यक है। विधान की बफादारी ही सब ऐक्य की प्रथम शर्त हुआ करती है। अतः प्रत्येक साधु साध्वी को विधान मे लिखित मयादाआ का प्रतिज्ञात्र होकर पालन करना होता है। कोई भी व्यक्ति इसमे अपने लिए अपवाद प्राप्त नहीं कर सकता। महोत्सव के दिनों मे नई मयादाआ के निमाण तथा पूर मयादाओं मे परिवर्तन सम्बन्धी समयानुकूल अनर मुमान भी आचार्य श्री के मामने प्रस्तुत किये जाते हैं। उनमे मे उपयागी सुझावों पर आवश्यकतानुसार विचार विमर्श के बाद आचार्य श्री स्वीकृति प्रदान करते हैं और ममस्त साधु साध्वी सब मे तद्विषयक लिखित पापका करते हैं। तब वह मयादा के रूप मे विधान का एक अपरिहार्य अंग बन जाती है। कुछ प्राचीन परम्पराय अलिखित होते हुए भी मयादा के समान मानी जाती हैं और इनका पालन भी विधान के समान ही अपरिहार्य होता है।

माघ गुक्ला सप्तमी के आसपास के दिना मे ही प्राय एक "हाजरी" का आयोजन भी हाता है। जिसमे साधु और साध्विया पयायत्रम से खड हानर "देस पत्र" मे लिखित मयादाओं की शपथ लेते हैं।

महोत्सव सम्पन्न हाने के बाद शीघ्र ही साधु साध्विया के विहार प्रारम्भ हा चाते हैं और ये प्राय अपने अपने गन्तव्य स्थाना की ओर आगामी महोत्सव मे सम्मिलित हाने की गाठ बांधकर चल पडते हैं।



६ दीक्षा पद्धति

तेरापथ में दीक्षा के विषय में यह नियम है कि कोई भी साधु-साध्वी अपना अलग शिष्य नहीं बना सकता। केवल एक वतमान आचार्य ने ही मन शिष्य होते हैं। भिक्षु स्वामी की दूरदर्शिता के कारण ही यह सध पृथक्-पृथक् शिष्य बनाने की परम्परा के दूषित परिणामों से बचा हुआ है, नहीं तो अन्य सम्प्रदायों की तरह यह भी अलग-अलग टुकड़ों में बंट गया होता। पाठकों की जानकारी के लिए तेरापथ की दीक्षा-पद्धति विषय में कुछ विवरण यहाँ दिया जाता है —

दीक्षार्थी जन अपनी दीक्षा की भावना आचार्य श्री के पास निदर करता है तब वे उसके आचरण, ज्ञान, वैराग्य और प्रकृति आदि के अनुसार में कठोर परीक्षण करते हैं। कई बार उस परीक्षण में पांच-पांच, दस-दस वर्ष तक गुजर जाते हैं। जो दीक्षार्थी इस परीक्षण में ठीक प्रकार से उत्कृष्ट सम्भारित दीक्षा तिथि घोषित कर दी जाती है और शेष शिष्यों से अलग देने से इन्कार कर दिया जाता है।

परीक्षा में उत्तीर्ण दीक्षार्थी को भी दीक्षा तर्क से उत्कृष्ट रूप से दीक्षा के लिये पूर्व निर्धारित सार्वजनिक स्थान में शिष्य के रूप में भेजा हुआ आम जनता के समक्ष उसके अभिमानक रूप में ही भेजा जाता है तथा लिखित स्वीकृति-पत्र भी आचार्य देव का नाम से

७ तपश्चर्या

साधु जीवन रख ही तपोमय है, फिर भी उस जीवन में रहने वाले व्यक्ति को त्रिशिष्ट आत्म शुद्धि के लिए त्रिभिध तपश्चर्या की आवश्यकता है। या तो साधु अपने लिए भोजन न तो बनाता है, और न अपने लिए बनाये भोजन का उपयोग ही करता है, गृहस्थ मय अपने खाने के लिए जो भोजन बनाता है उसीमें से यदि वह कुछ हिस्सा दाना चाहे तो साधु उसे समझाकर कि तुम इस दिये जानेवाले हिस्से की पूर्ति के लिए दूसरा भोजन नहीं बना सकोगे और तुम्हें अत्रिशिष्ट मात्रा से ही सन्तोष करना होगा— वह भोजन ले सकता है। केवल भोजन ही नहीं, वस्त्र आदि भी इसी प्रकार से लेने होते हैं। इस प्रकार की मिश्राचर्या को भा सिद्धान्त में तपश्चर्या का ही एक भेद बतलाया गया है किन्तु यहाँ हम जिन तपश्चर्या के विषय में कह रहे हैं उसका सम्बन्ध उपवास या निराहार रहने से है।

प्राचीनकाल में ऋषियों की तपश्चर्या का जो वर्णन सुनने में आता है, वह हम सब में प्रत्यक्ष देखा जा सकता है। बहुत से साधु आचार्यन के लिये एकांतर तप (एक दिन के अन्नर से आहार) करते हैं। पाँच, सात, आठ दिन की तपस्या ता साधारणतया हाँती ही रहती है। बहुत से साधु उसे भी है जो पन्द्रह पन्द्रह, बीस तीस तथा बीस-तीस दिन की तपस्या अनेक बार कर चुके हैं। चालीस चालीस और पचास पचास दिनों की तपस्या करने वाले

तेरापन्थ

भी इम सव म मौजूद है। सर्वाधिक १०८ दिना की तपस्या इम सव में हो चुकी है। स्मरण रहे यहाँ उन्हीं तपस्याओं का उल्लेख किया गया है, चिनम पानी के भिनाय और कुछ नहीं लिया जाता। उमली हुई छाछ (तर) का नितरा हुआ पानी पीकर तो दो, चार, छ और आठ आठ महीने तप की तपस्या हो चुकी है।

पाठसा की जिज्ञासा पूर्ति के लिए यहाँ एक तपस्वी साधु के तप का विवरण दिया जाता है। तपस्वी श्री शिवजी स्वामी ने अपने २५ वर्ष के साधु जीवन म इम प्रकार तपस्या की —

एक दिन की ४००, दो दिन की २० तीन दिन की ३०, चार दिन की ८, पाच दिन की ११, छ दिन की ७, सात दिन की ३, आठ दिन की ६, नौ दिन की ३, दस दिन की ३, ग्यारह दिन की ३, बारह दिन की ३, तेरह दिन की २, चौदह दिन की ३, पन्द्रह दिन की ३, सोलह दिन की २, तीस दिन की १०, पत्तीस दिन की १, छत्तीस दिन की २, चालिस दिन की १, पतालिस दिन की ६, पचास दिन की २, पचपन दिन की १, साठ दिन की ५, अठ-दत्तर दिन की १, नव्ने दिन की १, एक सौ छयासी दिन की १।

उपर्युक्त विवरण के ८० दिन तर के पृथक पृथक् तप जल के आधार पर और १८६ दिन का तप जल और छाछ (छाछ के नितरे जल) के आधार पर किया गया है।

यह एक साधु की तपस्या का विवरण है। उसे अनेक मायु तपस्वी हुए तथा वर्तमान में भी है। आप के भौतिक युग म इम प्रकार की तपस्या उस्तुत चक्रित कर देनेवाली है।



८ शिक्षा और कला

शिक्षा के विषय में तेरापथ प्रमाण मरने काफ़ी प्रगति की है। यद्यपि वैज्ञानिक आचार्य के पास नयी पन्त नया स्कूल, कॉलेज आदि में हिंदी प्रारंभ करत फिर भी अपनी जानार्जन की क्रिया में साधारणतः वे हिंदी से कम नहीं रहते। सर की शिक्षा-व्यवस्था आचार्यजी स्वयं मन्व्यान्ति करत हैं।

सर मरम समय आध्यात्मिक-शिक्षा-क्रम नामक पाठ्य प्रणाली चालू है। इसके विधानानुसार मरम आरम्भ, आगम, माहिय, अर्जन, कोप और इतिहास—ये पांच विषय तो अनिवार्य हैं तथा कला, ज्योतिष और अन्य कादक भाषा ये तीन विषय वैकल्पिक हैं। इनमें से यद्येच्छ किमी एक विषय का जना भी अनिवार्य है।

प्रवृत्तिका परांश के एक वर्ष का सम्मिलित कर देने पर उमरा पठनकाल आठ वर्ष का है। यथा समथ नियमानुसार परीक्षा भी ली जाती है और मरम अज्ञान हान पर आगाम। उप की पढ़ाई में सम्मिलित हुआ जा सकता है। इस पाठ्यक्रम का भाषा माध्यम संस्कृत और हिन्दी है। जो संस्कृत के माध्यम में अज्ञान आदि विषयों की पढ़ाई करने में समथ नहीं हैं, उनके लिये मरम नगी प्रणाली "सिद्धान्त शिष्याक्रम" नाम से आयोजित की गई है। इसका पठनकाल ७ वर्ष का रखा गया है। इसमें जैत सिद्धान्तों की जान कार के लिए विशेष ध्यान दिया जाता है।

शिक्षा के साथ साथ सघ का कला पक्ष भी काफी उज्ज्वल रहा है। साधु चया के उपयोगी उपकरणों के निर्माण में चिस हस्तशैल से काम लिया जाता है घस्तुन वह बड़ा ही दर्शनीय होता है। रजोहरण, प्रमाजनी आदि उपकरण प्रयास साध्य हाते हुए भी प्रायः बहुत ही कलापूर्ण ढंग से बनाये जाते हैं। इनके अतिरिक्त साधु-जनाचित बस्तों की मिटाई तथा पात्रों के रंग आदि का कार्य भी बड़ी ही कलापूर्ण पद्धति से किया जाता है।

हस्तलिपि की कला में ता कई साधुओं ने गहन ही ढाढ़ किया है। आज के यात्रि युग में जगति हस्तलिपि इतिहास की एक नहानी मात्र रह गई है और घमीट में लिपना ही विद्वता का एक चिह्न मान लिया गया है, साधुआ की हस्तलिपि अपनी सुन्दरता और सफाई में कई सानी नहीं रखती। सूक्ष्म लिपि में तो उन्होंने एक आदर्श ही उपस्थित कर दिया है। कुछ लिपि बनाआ न तो उसे पत्र लिखे हैं जिनमें दो दो हजार और ढाढ़ ढाई हजार श्लोक समा गये हैं। ये पत्र केवल नौ इंच लम्बे और चार इंच चौड दोना ओर लिखे हुए हैं। यहाँ यह जान लेना आवश्यक है कि इनके लगन में किसी प्रकार के चश्मे आदि का कोई प्रयोग नहीं किया गया। इतना माननीय आँगो के बल पर यह कार्य किया गया है। सन्त २००३ में लिखे गये एक पत्र की अक्षर सरया लगभग अस्मी हजार है।

कुछ आध्यात्मिक तर्जों को समझाने के लिये साधु चित्र भी बनाते हैं। इन सत्र विषयों की विशय जानकारी तो रिक्ट सम्पर्क में आने से ही प्राप्त की जा सकती है।



६ साहित्य-सर्जन

तेरापथ के आचार्यों तथा साधुओं ने साहित्य के मन्त्रालय -
में अपना विशेष योग दिया है। स्वामीजी से लेकर आचार्य महाराज
मनन की परम्परा अबाध गति से चालू है, उसका पूरा पता पूरा
अवश्य ही श्रम माध्य तथा समय माध्य काम है, जिन्से ही
सर्जन के रूप में सशिक्षित सा परिचय ही दिया जा रहा है।

तेरापथ की नींव रखने के साथ ही साथ तेरापथ के मन्त्रालय
में स्वामीजी ने ही रखी। मूल जैन सिद्धान्त और जैन धर्म का
म फैलाने के उद्देश्य से ही स्वामीजी ने अपनी मन्त्रालय
स्वामिनिधि था कि ये जनता की भाषा का हा बनने। स्वामीजी
अधिकांश में राजस्थान ही रहा अतः यहाँ का राजस्थानी भाषा
में ही स्वामीजी ने कृतियाँ कीं। उन रचनाओं में -
जीवन के लिये उप्याधी अनेक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ हैं जो
विशेषणान्तर, कुट्ट आचार निरोधक, कृष्ण विद्या, कृष्ण
नात्मक तथा कुट्ट स्वयं आदि प्रकीर्ण रूप में लिखी गई हैं।
काल में लगभग ३८००० हजार पण्डितों द्वारा लिखी गई हैं।
"मिश्र जग रमायन" आदि में लिखी गई हैं।
रागिनीपूण कविता आदि के रूप में हैं।

कृतियों को "भिव-ग्रन्थ रत्नाकर" नाम से एक जगह संकलित कर लिया गया है। उसी रचनाओं में से कुछ मुख्य रचनाएँ ये हैं।

आचार जी चौपाड़, शद्धा जी चौपाई, वारह व्रत की चौपाई, कालनादी जी चौपाड़, चार निरुपा की चौपाड़, अनुग्रहा की चौपाई, विनीत-अविनीत की चौपाई, शील की नववाड, नव मद्भाव पदार्थ निर्णय, भरत चरित्र, मुद्रान चरित्र इत्यादि।

तेरापथ के चतुर्ष आचार्य श्री जयाचार्य जी साहित्य-माधना भी रामजी की तरह नाना प्रवाहा में बड़ी हैं। आगम साहित्य की पद्यरत्न टीकाएँ, तन्त्र विश्लेषण, आर्याण, जीवन चरित्र, शिक्षा, मर्यादा, चचा न्यादि विषयों पर आपकी लेखनी ने बहुत ही गहरा प्रभाव डाला है। आपने ग्रंथ भी राजस्थानी भाषा में हैं। आप तो जन्म जात करिध। ६ वर्ष की अवस्था से ही आपने अपने बचि जीवन का प्रारम्भ कर दिया था। "सतगुग माला" उमी छोटी अवस्था की प्रथम कृति है। आपने अपने जीवन काल में जो रचनाएँ की हैं उनमें से केवल एक "भगवती की जोड" की पर मर्या ही लगभग ६० हजार है। आपकी रचनाओं में से कुछ का यहाँ नामोल्लेख किया जाता है —

भगवती की जोड, उत्तराध्ययन की जोड, पन्नवणा की जोड, आगरांग की जोड, निशीथ की जोड, भ्रमविध्वंसन, कुमनि विह्वलन, सदेह विषोपधि प्रश्नोत्तर तत्र धोध, विनाज्ञा मुग मटन, भिक्षु जश रसायन, नय-जश, दीप जश इत्यादि।

वर्तमान आचार्य श्री तुलसी गणाने इस साहित्य माधना की धारा को अपने प्रकाण्ड पाण्डित्य से और भी अविन बल प्रदान किया है। आपकी रचनाएँ सस्त्रुत, हिन्दी, और राजस्थानी इन तीनों भाषाओं में की श्री वृद्धि करती हैं। दर्शन, सिद्धान्त, आर्याण, जीवनी इत्यादि अनेक विषयों में आपने अपनी लेखनी का उपयोग किया है। आपकी भावी रचनाओं से अध्यात्म साहित्य को बहुत बड़ा सम्पल मिलेगा यह निर्विवाद कहा जा सकता है। आपकी प्रगट बुद्धि से उद्भूत कुछ ग्रन्थरत्न निम्नोक्त हैं —

सस्कृत जैन सिद्धान्त बीपिका, व्याकरणिका, शिक्षा घणायति, वर्णव्यपन्त्रिका। रावस्थानी—कालुयशाविलाम्, उपदश यनिका। हिन्दी—शैक्ष शिक्षा प्रकरण, इत्यादि।

तेरापथ के साधु भी साहित्य प्रणयन में अच्छा भाग लेते हैं। उनमें बहुत से कुशल वक्ता, आशु कवि तथा लेखक हैं। साधुओं की तरह साध्वियाँ भी सस्कृत तथा हिन्दी में काव्य, प्रवचन, तथा लेखन आदि में सिद्धहस्त हैं। मेधावी साधुओं द्वारा लिखित कुछ ग्रन्थ निम्नलिखित हैं —

भिक्षु शास्त्रानुशासन (सस्कृत महाव्याकरण) त्रिमरी वृत्ति १८०० हजार श्लोक प्रमाण है। भिक्षु शास्त्रानुशासन लघु वृत्ति, कालु कौमुदी (२० लघु प्रक्रिया) तुलसी प्रभा (२० हैम व्याकरण लघु प्रक्रिया) तुलसी मन्त्री (हैम प्राकृत व्याकरण प्रक्रिया) अर्जुन मालाकारीयम् (२० गद्य काव्य) प्रभव प्रबोध (२० गद्य काव्य) शान्त सुधारम टीका, युक्तिवाद, सुकृष्ण, स्मितम्, अहिंसा, दयादान, अहिंसा और उसके त्रिचारक, अहिंसा की सही समझ, युग र्म तेरापथ, आचार्य श्री तुलसी (जीवनी), अणुत्रत जीवन दर्शन अणुत्रत दर्शन, अणुत्रत इष्टि, आचार्य भिक्षु और महात्मा गांधी, त्रिचार विन्दु आदि आदि।

इस समय भी जो साहित्यिक योजनाय चल रही हैं—एक तेरापथ के दो सौ वर्षों के इतिहास निमाण की और दूसरी आगमों के अनुवाद की। आगम योजना के अन्तगत त्रैनागमों का शब्द-चयन किया गया है, जिससे शब्दों के भाष्य टीका आदि में विभिन्न स्थानों पर किये गये विभिन्न अर्थों को समझने करते हुए उनका सामान्य त्रिठाया जा सके और उनकी पृष्ठ-भूमि में रही हुई भिन्नार्थता का सही पता लगाया जा सके। सचित शब्दों का उपयोग शब्द कोष बनाने में किया जायेगा और साथ ही उनमें से विशिष्ट शब्दों को विभिन्न वर्गों में छांटकर बगानुसारी सप्त भी किया जायेगा जमा निरचय हुआ है। इस सारे कार्य को त्रैनागमों के हिन्दी अनुवाद की पूर्व भूमिका के रूप में कहा जा सकता है। तेरापथ की प्रथम

तेरापन्थ

शताब्दी की पूर्णता के आसपास जैनागमों की रचस्थानी भाषा में पत्र बद्ध टीकाय लिखी गई थीं तो दूसरी शताब्दी के अन्तिम वर्षों में हिन्दी अनुवाद की योजना चालू की जाए—यह वास्तव में तेरापन्थ की साहित्य परम्परा के अनुरूप ही है।

साहित्य के प्रिकाम तथा स्रजन शक्ति को बल देने के लिए "जय-ज्योति" नामक हस्त लिखित पत्रिका भी निकाली जाती है जिसमें साधु साध्वियों के समृद्ध तथा हिन्दी के लेख, कविताय, कथायें आदि प्रकाशित होती हैं। इसके कथा विशारद आदि बुद्ध विशेषज्ञ भी निकाले गये हैं जो काफी सुन्दर बन पड़े हैं।



१० लोकहितकारी प्रवृत्तियाँ

आत्म हित की साधना के साथ साथ पर-हित की साधना भी साधु-जीवन का उद्देश्य होता है। तेरापथ के माधु अपने समय की अक्षुण्णता रगते हुए पर कल्याण में सदा तत्पर रहे हैं। भटकी हुई जनता को नैतिकता का द्वार दिखाना सर्वत्र उन्होंने अपना कल्याण का मार्ग समझा है। वस्तुतः पर कल्याण भी ही कल्याण का ही एक आवश्यक अंग है। इसीलिये तो जब जन अनैतिकता का बातावरण छा जाता है तब तब कोई न कोई महर्षि उसके विनाश में अपना जीवन लगा देने तब को उद्यत हो जाते हैं।

तेरापथ के आचार्य समय समय पर जनता के तत्कालीन कुसस्कारों, दुर्गुणों और दुर्गुणियों के विरुद्ध कार्य करते रहे हैं, वे अपने आदर्श जीवन और उपदेशों के द्वारा समाज को सुसस्कार और मद्गुणों की ओर बढ़ने की प्रेरणा देते रहे हैं जिन्होंने जनता की अनेक बुराइयों का विनाश तथा ह्रास हुआ है। वर्तमान आचार्य श्री तुलसीगणी का हृदय भी वर्तमान की अनैतिक वृत्तियों के प्रति विद्रोह करता है, जनता का अधपात आप के चित्त को ठेस पहुँचाता है, अतः समय समय पर आप उसके उत्थान का उपक्रम करते आये हैं। कुछ वर्ष पहले एक तरह सूत्री योजना के द्वारा आचार्यश्री ने जनता की अनैतिक प्रवृत्तियों और कुम्हटियों की दूर हटान का प्रयास किया था, जो कि काफी सफल रहा। इनारा व्यक्तियों ने धूम्रपान,

परस्त्रीगमन, ग्राह्य पन्थाया मे मिलावट, तौल-माप मे कमी बेसी, बन्या विप्रय या घर विप्रय आदि दुर्गुणा को छोड कर अपने मे छिपी हुई मानवता का व्यक्त परिचय लिया था। उस प्रचार से आचार्यश्री ने अनुभव किया कि मानव की मानवता मर नहीं गई है किन्तु मूर्च्छित है, यदि उसे जगा लिया जाय तो मनुष्य अपनी सम्पूर्ण मनुष्यता के साथ इस भूलोक को ही स्वर्ग बनाकर जी सकता है। फलस्वरूप मनुष्य की सद्वृत्तियों और मानवता को जगाने के लिये आचार्य द्रव ने पूर्वाक्त तेरह नियमों को अपने म गर्भिन करनेवाले अणुत्रन नियमों की एक विशाल योजना तैयार की। हिंसक और दुर्गुणी वृत्तियाँ जत्र सगठित होकर काम करते हैं तो अहिंसक और सद्वृत्तियों का तो और भी सरलता से सगठित किया जा सकता है। इसी बात को ध्यान मे रख कर सत्र २००६ की फाल्गुन शुक्ल २ के दिन अणुत्रन-योजना को कायरूप मे परिणत करते हुए आपने अणुत्रती सत्र की स्थापना की और तत्र से ही एकनिष्ठ होकर अणुत्रनों का प्रचार करने मे लगे हुए हैं।

करीब पाँच छ सत्रों के अनुभवों और प्रयोगों के बाद “अणुत्रती सत्र” को “अणुत्रन आन्दोलन” का रूप लिया गया और नियमावली मे भी यथा वश्यक परिवर्तन किये गये। ये परिवर्तन आन्दोलन के त्रार्षिक अधिवेशनों मे आनेवाले सुभाषा और अणुत्रतियों के जीवन मे प्रतिष्ठित होनेवाली घटनाओं के आधार पर किये गये। शीघ्रता से बदलती हुई परिस्थितियों मे नियमों की भाषा को व्यापक और सप्राही रूप देने के लिये भी इन परिवर्तनों की आवश्यकता जान पड़ी। अणुत्रन नियमों की रचना मनुष्य की चिरकालिक सुराइयों के आधार पर की गई है और परिस्थितिजन्य सामयिक सुराइयों को उदारहण के रूप मे उनके अन्तर्गर्भित कर दिया गया है। पहले नियमों की सत्र ८४ थी अब ४८ है।

अणुत्रन आन्दोलन का लक्ष्य है—जाति, देश, यग और धर्म का भेदभाव न रखते हुए मनुष्यमात्र को आत्म-सयम की ओर प्रेरित करना तथा अहिंसा और विश्व शान्ति की भावना का प्रसार करना, अणुत्रन नियमों का ग्रहण

अच्छीस,]

करनेवाले व्यक्ति अणुव्रती कहलाते हैं। उन्हें तीन श्रेणियाँ में विभक्त किया गया है—(१) मर व्रता को (४८ व्रता को) ग्रहण करनेवाले व्यक्ति 'अणुव्रती' है। इसमें मात्र सात अन्य ६ विशिष्ट व्रता को ग्रहण करनेवाले 'त्रिशिष्ट-अणुव्रती' और कम से कम ११ व्रता को जो कि ४८ नियमों में से ही चुन कर रख गये हूँ ग्रहण करनेवाले "प्रवेशक अणुव्रती" कहलाते हैं।

अणुव्रत पाँच हैं—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और अपरिमह। त्रिंश्रण और त्रियोग से जब ये पाँचों व्रत अपनी सम्पूर्णता से जीवन में उभार जाते हैं तो उन्हें महाव्रत कहा जाता है, किन्तु गृही जीवन में इसकी पूर्णता में एक अशक्यानुष्ठान है, अतः कुछ छूट के साथ अर्थात् जीवन की अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के अतिरिक्त जब एक सीमावद्ध होकर ये जीवन में उतर जाते हैं तब इन्हें अणुव्रत (छाटे नियम) कहा जाता है। "अणुव्रत" जैन आचार शास्त्र का शास्त्र है। भिन्न भिन्न प्रकार से जीवन-यापन करनेवाले व्यक्तियों के लिये जो ये भिन्न भिन्न ४८ नियम बतलाये हैं, वे सब इन्हीं मूल पाँच व्रता की विशेष व्याख्या के रूप में हैं। नियमों के पूरे त्रिंश्रण के लिये 'अणुव्रत आन्दोलन' की नियमावली देखनी चाहिये। यहाँ तो केवल सक्षिप्त सा परिचय दिया जा रहा है —

अहिंसा अणुव्रत के नियम

(१) चलने फिरनेवाले निरपराध प्राणी की सफलपूर्वक घात नहीं करना (२) आत्म हत्या नहीं करना। (३) गम हत्या नहीं करना। (४) हत्या व ताड़ फोड़ना उद्देश्य रखनेवाले मूल या सस्था का सदस्य नहीं बनना और न उनके किन्हीं कार्यों में भाग लेना। (५) किसी भी व्यक्ति को अस्पृश्य नहीं मानना। (६) किसी के साथ क्रूर-व्यवहार नहीं करना। अर्थात्—(क) किसी कर्मचारी, नौकर या मजदूर से अति श्रम नहीं लेना। (ख) अपने जाति प्राणी के खान पान व आजीविका का कल्प भाव से विच्छेद नहीं करना। (ग) पशुओं पर अति भार नहीं लादना।

सत्य अणुव्रत के नियम

(१) वचन विक्रय में माप तौल, सत्या, प्रकार आदि के विषय में असत्य

तेरापन्थ

नहीं बोलना। (२) जान-बूझकर असत्य निणय नहीं देना। असत्य मामला नहीं करना और न असत्य साक्षी बनना। (४) व्यक्तिगत स्वार्थ या द्वेष वश किसी का मर्म (गुप्त बात) प्रकाश नहीं करना। (५) सौंपी या धरी (घ वर) वस्तु के लिये ना नहीं करना। (६) जालमाजी नहीं करना। जथात्—(क) चाली दस्ताखर नहीं करना। (ख) झूठा रत या दस्ताखर नहीं लिखवाना (ग) जाली सिक्का या नाट नहीं बनाना। (७) बचनापूर्ण व्यवहार नहीं करना। अथात्—(क) मिथ्या प्रमाण पत्र नहीं देना। (ख) मिथ्या विज्ञापन नहीं करना। (ग) अवैध तरीका से परीक्षा में उत्तीर्ण होने की चेष्टा नहीं करना। (५) अवैध तरीकों से विद्यार्थियों के परीक्षा में उत्तीर्ण होने में सहायता नहीं बनना। स्वाध, लोभ या द्वेषवश भ्रमोत्पादन और मिथ्या समाद, लेख व टिप्पणी प्रकाशित नहीं करना।

जर्मनी अणुव्रत के नियम

(१) दूसरों की वस्तु की गार वृत्ति से नहीं लेना। (२) जान-बूझकर चोरी का वस्तु को नहीं खरीदना और न चार को चोरी करने में सहायता देना। (३) राज्य निषिद्ध वस्तु का व्यापार व आयात निर्यात नहीं करना। (४) व्यापार में अप्रामाणिकता नहीं धरना। जथात्—(क) किसी चीज में मिलावट नहीं करना। (ख) नकली का असली बताकर नहीं बेचना। (ग) एक प्रकारकी वस्तु दिगानर दूसरे प्रकार की वस्तु नहीं देना। (घ) सौंदे के धीरे में नहीं खाना। (ङ) फूट ताल माप नहीं करना। (च) अच्छे माल को घटा कानन की नीयत से गराव या दागी नहीं ठहराना। (छ) व्यापारार्थ चोर जानार नहीं करना। (५) किसी ट्रस्ट या सस्था का अधिकारी होकर उसकी धन-सम्पत्ति का अपहरण या अपव्यय नहीं करना। (६) निना निषिद्ध रेल आदि से यात्रा नहीं करना।

ब्रह्मचर्य अणुव्रत के नियम

(१) बेश्या व पर स्त्री गमन नहीं करना। (२) किसी प्रकार का अप्रा कृतिक मैथुन नहीं करना। (३) महीने में कम से कम २० दिन ब्रह्मचर्य का धारण]

लोभितकारी प्रवृत्तिया

पालन करना। (५) कम से कम १८ वर्ष की अवस्था तक ब्रह्मचर्य का पालन करना (कन्याओं के लिये १५ वर्ष की अवस्था तक)। ४५ वर्ष की आयु के बाद विवाह नहीं करना।

अपरिग्रह अणुग्रह के नियम

(१) अपन मयान्ति परिमाण से अधिक परिग्रह नहीं करना। (२) घूम नहीं लेना। (३) मत (वोट) के लिये रूपया न लेना और न देना। (४) लोभप्रश रोगी की चिन्त्रिता में अनुचित समय नहीं लगाना (५) सगाई-विवाह के प्रसंग में किसी प्रकार के लेने का ठहराव नहीं करना। (६) देहेज आदि का प्रदर्शन नहीं करना और न प्रदर्शन में भाग लेना।

शील और चर्या के नियम

अणुग्रही की जीवन चर्या जीवन शुद्धि की भावना के प्रतिकूल न हो। इमलिय शील और चर्या के कुछ नियम हैं जो इस प्रकार हैं —

(१) आमिष भोजन नहीं करना। (२) मद्यपान नहीं करना। (३) भांग, गाना, तम्बाकू, जर्दा आदि का खाने पीने व सूंधने में व्यवहार नहीं करना। (४) खाने पीने की वस्तुओं की वैदिक मयादा करना (५) सब धर्मों के प्रति विविधा के भाव रखना, भ्रान्ति नहीं फैलाना, मि या आराधन नहीं लगाना। (६) उत्तमान वस्त्र के सिवाय रेशमी आदि कृमि हिंसाजन्य वस्त्र न पहनना और न ओढ़ना। (७) विशेष परिस्थिति, विदशापाम और वर्तमान वस्त्र के सिवाय स्वदेश से बाहर उन वस्त्र न पहनना और न ओढ़ना। (८) अमद् आनीरिषा नहीं करना। अर्थात् (८) मद्य का व्यापार नहीं करना। (९) जुआ और घड दौड़ नहीं खेचना। (१०) आमिष का व्यापार नहीं करना। (११) शस्त्रास्त्र और गोला बारूक का उद्योग धन्धा व व्यापार नहीं करना। (१२) एक पत्नी के होते दूसरा विवाह नहीं करना। (१३) मृतक के पीछे प्रथा रूप से नहीं राना। (१४) बृहत् जीवनचार नहीं करना। अर्थात्—(क) २५० से अधिक व्यक्तियों को भोजनार्थ निमंत्रित नहीं करना। (ख) दूसरे गौत्र वरात में १०० से अधिक व्यक्तियोंको नहीं ले जाना। निमंत्रण देनेवाले

पक्ष द्वारा एक मयादा का बलघन हो, उहाँ भोजन नहीं करना। (१२) होली पर गन्तु पदार्थ नहीं डालना और न अरणीय व भद्रा व्यवहार करना।

जात्म-उपामना के नियम

(१) प्रतिदिन कम से कम १५ मिनट आत्म चिन्तन करना।

(२) प्रतिमास एक उपवास करना यदि यह सम्भव न हुआ तो दो पनाशन करना।

(३) पशु में एक घात सामूहिक प्रार्थना, प्रतावलोकन और पाक्षिक भूलों व प्रगति का निरीक्षण करना।

(४) क्रिमा के माथ अनुचित या कटु व्यवहार हो जाने पर १५ दिन की श्रमि स क्षमा याचना कर लेना।

(५) प्रतिवर्ष एक अहिमा त्विस मनाना। उसदिन—

(क) उपवास रचना।

(ख) ग्द्वर्ष का पालन करना।

(ग) अमत्य व्यवहार नहीं करना।

(घ) कटु वचन नहीं बोलना।

(ङ) मनुष्य, पशु पक्षी आदि पर प्रहार नहीं करना।

(च) मनुष्य व पशुओं पर सवारी नहीं करना।

(छ) वष भर में हुद् भूला की धालोचना करना।

(ज) क्रिमा के माथ हुण कटु व्यवहार के लिए क्षमत क्षामना करना।

अणुप्रता के इस सामयिक प्रसार के फल स्वरूप प्राय सभी प्रकार के व्यक्ति इसमें सम्मिलित हुए हैं और नैतिक जागरण के इस महान अनुष्ठान में हाथ बटाया है। जा नतिरता राष्त्रीय नियमों व वैज्ञानिक प्रयोगों के द्वारा पैदा नहीं की जा सकती, वह एक अर्चिय यागी की मानसिक निष्ठा का सान्य पाकर व्यक्ति व्यक्ति के हृदय परिवर्तन के माथ साध स्वय पैदा हो रही है।

लोहहतकारी प्रवृत्तिया

अणुत्रत प्रश्न करने वाले व्यक्तियों की सरया धीरे धीरे बढ़ रही है और यह एक शुभ लक्षण है। तूफान आता है और चला जाता है किन्तु मन्द-मन्द हवा सदा प्रहती रहती है। इमम भाग्यवेश का काम नहीं है। समम ममम कर कुछ व्यक्ति भी यन्ि सत्य-जीवन स्वीकार करते हैं तो वह केवल बड़ी सरया की अपेक्षा बहुत उत्तम है। अणुत्रत आन्दोलन का प्राय वर्ष में एक बार अधिवेशन होता है, उसम अणुत्रती भाई बहनों को अणुत्रती-जीवन की अपनी कठिनाइयाँ के बारे में सोचने का अवसर भी मिलता है। प्राप्त अनुभवा के आधार पर आन्दोलन के नियम ममय समय पर सशोधित किये जाते हैं तथा सर्पिक गलियो आदि पर भी विचार किया जाता है।

अणुत्रत आन्दोलन चरित्र निर्माण का आन्दोलन है। आप मानय जाति को यन्ि सबसे अधिक किमी वस्तु की आवश्यकता है तो चरित्र निर्माण की है, क्योंकि उसने सबसे अधिक इसी वस्तु का गीया है। ससार के अधिकाश दुःख और अशान्ति का प्रधान कारण चरित्र हीनता ही है। शय असत्य और अप्रामाणिकता का व्यवहार करने वाला व्यक्ति दूसरों से सचाई और प्रामाणिकता की आशा कैसे कर सकता है ? जहां पारस्परिक व्यवहार दोष युक्त होता है, यहां दुःख और अशान्ति के अतिरिक्त और मिल ही क्या सकता है। शय छूत रोग के समान बहुत शीघ्र अपने आप फैलते हैं। किन्तु गुण औपधि के ममान धार धारे असर करते हैं, अत अपे का इस बात की है कि ससार में दोष की अपना गुण अधिक मात्रा में रहें, सुख और शान्ति तभी स्थिर रह सकती है। अणुत्रत आन्दोलन गुणों को बढ़ावा देने का ही एक प्रयास है।

भौतिकता की चलाचौंध में पडकर नैतिकता से दूर हट हिमक मानव को यह आन्दोलन एक चुनौती है। आप दुनिया को नैतिक भौद्धान्मय जीवन और अनैतिक शत्रुमय जीवन में से एक को चुनना है। आचार्य श्री अणुत्रत भावना द्वारा नैतिक भौद्धान्मय जीवन को चुनने की ही आपसे प्रेरणा देते हैं।



११ आचार्य श्री तुलसी

तेरार्षद के वर्तमान आचार्य श्री तुलसी गणी हैं। सुलैल शरीर, गौर वर्ण, भय्य ललाट और तेजस्वी आँसों वाला आपका घाह व्यक्तित्व जहा सम्पर्क म आने वाले व्यक्ति पर अचूक अमर डालता है वहां मरल व्यवहार, मृदु सभाषण, समन्वयकारिणी प्रतिभा और निर्भीक उक्तिरूप आपका आन्तरिक व्यक्तित्व भी कम असर नहीं डालता। आपको देवदर भगवान महाश्रीर और गौतम बुद्ध का व्यक्तित्व याद आये बिना शायद ही रहे।

आपका जन्म सम्प्रत १८७१ के कार्तिक शकला २ के दिन राजस्थानान्त र्गत लाडनू नामक शहर म हुआ। ११ वष की अग्रस्था म ही तीव्र वैराग्य-भावना जागृत हाने के फलस्वरूप अष्टमाचार्य श्री कालुगणी के कर-धमलों द्वारा आपका दीक्षा रसरार सम्पन्न हुआ। दीक्षा के बाद ११ वर्ष तक आप विद्याध्ययन मे सलग रह। सस्कृत तथा प्राकृत के करीब २१ हजार श्लोक आपने कण्ठस्थ क्रिये और अनेक आगमों का मननपूर्वक पारायण क्रिया। तीव्र अध्ययमाय और महज कर्मठता के धनी इस व्यक्ति ने २ वष की अवस्था मे ही अपने को इतना विचारशील और मननशील बना लिया कि अष्टमाचार्य ने अपने पीछे आचार्य पद के लिए आपको चुना।

२२ वर्ष के एक युवक को इतन बड़ श्रमण मध का भार सोंप देना अवश्य ही आश्चर्य का विषय था, लेकिन आपने अपने साठन शील व्यक्तित्व से उस भार को इस प्रकार वहन क्रिया कि भार सोंपना आश्चर्य नहीं, बलिक उसको इतनी सफलता से वहन करना ही आश्चर्य बन गया।

श्रीवालीन]

आचार्य श्री तुलसी

इस समय आपकी अवस्था करीब ४० वर्ष की है। बीस वर्ष के इस शासनकाल में आपने सब का सर्वतामुखी जो विकास किया है वही आपके महान् नवत्व का परिचायक है। कर्मठता तो आपका स्वभाव बन गई है, रात दिन के २४ घण्टों में से लगभग १८ घण्टे तो आपके श्रम में ही बीतते हैं। केवल रात्रि के ६ पट्टे माने के लिये हैं, उनमें भी कभी कभी कठौती करनेकी मौन आ जाती है। पाद विहार शिष्यों को व्याकरण दर्शन आदि विषयों का अध्यापन, प्रवचन, आगन्तुज निहामु व्यक्तियों के माय तत्प चचा, प्रथ-प्रणयन आदि कार्यों में सारा समय निभक्त रहता है। आश्चर्य यह है कि ज्यों ज्यों कायाविक्रम होना है त्यों त्यों आपकी कमठला और बगवती हो जाती है, यज्ञान आपके मुह पर शायद ही कभी देखने का मिठ।

उपर्युक्त बातें हैं किसी प्रकार के भक्ति अतिरेक से नहीं लिये गी हैं और न इसलिए कि मैं उनका एक शिष्य हूँ या उनसे प्रिया प्राप्त की है तथा उनके अधिक मनिमूढ रहा हूँ किन्तु ये सब बातें आपने अल्पम्य व्यक्तित्व से प्रभावित होने वाले व्यक्तियों द्वारा अभिव्यक्त उद्गारों के आधार पर लिगी हैं। इस बात का प्रामाणिकता काह भी व्यक्ति बुद्ध समय के लिये आपको निश्चिन्त रहकर सहज ही में प्राप्त कर सकता है।

आप एक सब के आचार्य हान के साथ साथ उद्भूत करि, मार्गनिज तथा लेयक भी हैं। दर्शन तथा जैन सिद्धान्त जैसे विषयों पर आपने अनक पुस्तकें लिगी हैं जिनमें से बुद्ध का नामोल्लेख पीछे किया जा चुका है।

बुद्ध-ग्रन्थ टुनियां के मनीषियां द्वारा अनुष्ठित शान्ति प्रवचना में आपने अनक धार अपन आचार्यमरु इष्टिज्ञान का व्यक्त करनेवाले सदृश किया है। विश्व शान्ति सम्मेलन (World peace conference) में आपने द्वारा प्रदत्त "अशान्त विश्व का शान्ति का संदेश" पढ़ा गया था जिसकी तत्स्थ विद्वानों पर अच्छी प्रतिक्रिया हुई थी। इस संदेश के अन्तगत शान्ति के नव-सूत्रों के विषय में महात्मा गांधी ने कहा था—“क्या ही अच्छा होना इस महापुरुष के बताये हुए इन नियमों को मानकर दुनिया चलना।”

एक जाध्यादिमङ्ग संगठन के नेता होने के नाते आप अपना यह कर्तव्य समझते हैं कि जनता की हिंसा भी समाहित नैतिक अस्त-व्यस्तता को दूर करने के लिए सन्नद्ध रहा जाये। अधार्मिकता के तातापरण को अनुदानोपहत कर धार्मिकता व नैतिकता का धीन बपन कर देना आपके विशिष्ट उद्देश्य में से एक है। भविष्यद्रष्टा की तरह आप भी आन्तरिक आँसू से अनागत की काली चादर के पार देखते हैं और उसके तल में छिपे रहस्या को जान लेते हैं।

आप यह मानकर चलते हैं कि मनुष्य में स्वभावतः ही सत् और असत् दोनों प्रकार की वृत्तियाँ होती हैं। जिन वृत्तियों को उभरने का अधिक अवकाश मिलता है वे ही मनुष्य के भाग्य जीवन का घटक होती हैं। अब क्या न पहले से ही मनुष्य की सद् वृत्तियाँ का उभार आये, ताकि असद् वृत्तियाँ को उपर आने का अवसर ही न मिले और वे अपने आप अपनी विरोधी वृत्तियों के रूप में बदल जाय। इसी उदात्त भावना को काय रूप देने के त्रिविध प्रयत्नों का व्यपस्थित रूप ही अणुमन आन्दोलन है जो कि जनता की वर्तमान अनैतिक भावना के विरुद्ध एक मोचा है और नतिकता के पुनर्जागरण की आरंभ शुभ पदव्याप्त है।

आपकी धारणा है कि कोई भी सफ्ट धातु से नहीं आता। यह तापमान ही पैदा किया जाता है, नीति विशुद्ध रहने पर भयानक दिक्कतों को दूर करने वाला सफ्ट भी तट पर जाकर समाप्त हो जाने वाली समुद्र की भयावह लहर की तरह अपने आप में बुझ नहीं रह पाता। दुर्नाति ही सारे कष्टों की जननी है, जब तक जनता इस तत्व को हृदयगत कर अपने जीवन में एक रस नहीं कर लेती तब तक शान्ति और सुख की वरदान मर मरीचिका से बढ़कर बुझ नहीं मानी जा सकती।

आप एक समन्वयमूलक विचारधारा का पोषण करने वाले आचार्य हैं। विरोधी से विरोधी व्यक्ति को भी आप उन्नी ही शान्ति और धर्म से सुनते हैं जितना कि किसी अनुकूल व्यक्ति की बात को। आपके मन्तव्यानुसार व्यक्ति की स्थितियाँ और शक्तियाँ पृथक्-पृथक् हाती हैं। अतः विभिन्न

व्यक्तियों द्वारा विभिन्न परिस्थितियों में विभिन्न मस्तिष्क शक्तियों के रूप में योग से सोचा गई बातों में मतभेद हाना कोई असम्भव बात नहीं है। परन्तु ऐसे मतभेद होने की कोई आवश्यकता नहीं होनी चाहिये। मतभेद न हो—यह त्रिचार-शुद्धता का सूचक है और मतभेद न हो—यह गौर्भाव का। मतभेद हात हुए भी मतभेद न हो—एसी स्थिति अपेक्षित है। त्रिचार-स्वातन्त्र्य में मतभेद को राना नहीं जा सकता किन्तु मतभेद हाने की स्थिति पर रोक लगाई जा सकती है। इसका मार्ग समन्वयात्मक दृष्टिकोण ही हो सकता है। सब मत या सम्प्रदाय एक बन जायें—यह कल्पना दुर्लभ है। सम्भाव्य कल्पना यह है कि सब सम्प्रदाय परस्पर मित्र बन जायें। कोई किसी के प्रति विरोध, आक्षेप या घृणा की भावना न फैलाये। इस कल्पना का साकार रूप देने के लिये आपने विश्व के विभिन्न धर्मावलम्बियों के समन्वय समन्वयमूलक एक पंच मूली कार्यक्रम प्रस्तुत किया था। वे पाँच सूत्र ये हैं।

१—मण्डनात्मक नाति बरती जाय। अपनी मान्यता का प्रतिपादन किया जाय। दूसरों पर मौखिक या लिखित आक्षेप न किये जाय।

२—दुसरों के त्रिचारों के प्रति सहिष्णुता रखी जाय।

३—दुसरे सम्प्रदाय या उमर साधु-सच के प्रति घृणा और तिरस्कारका भावना का प्रचार न किया जाय।

४—सम्प्रदाय परिवर्तन करे तो उसके माथ मामाचिक दृष्टिकार आदि के रूप में अबाधनीय व्यवहार न किया जाय।

५—धर्म के मौलिक तथ्य अहिंसा, सत्य, अशौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह को जीवन-यापी बनाने का सामूहिक प्रयत्न किया जाय।

आध्यात्मिकता, नैतिकता और समन्वयकारिता के सदेशवाचक के रूप में इस समय आप हजारों मीलों का पैदल यात्रा करते हुए अपनी आन-पूर्ण वाणी से जनता का उद्बोध करते हुए घूम रहे हैं। अपने विद्वान् शिष्यों का भी आपने दूर-दूर तक इसी उद्देश्य से भेजा है। भारतवर्ष की श्रृष्टिभूमि आज भी पुरातन काल की तरह इस महार्थ की धरण धूलि से पावन बन रही है।

